श्वासकृच्छ्र, श्वसनिकाशोथ एवं प्रतिश्याय आदि में पान के पत्तों को एरंडतैल लगाकर, गरम कर छाती पर बांधने से बहुत लाभ होता है।

(२) रोहिणी (डिफ्थीरिया Diphtheria) नामक बच्चों में अधिक होने वाले घातक गले के विकार में ४ पत्तों का रस थोड़े गरम पानी में मिलाकर गरारा करने को देते हैं। पान के तैल को १ बूंद की मात्रा में करीब आध पाव उष्ण जल में मिलाकर इसी प्रकार प्रयोग करते हैं तथा उसकी वाष्प सूंघते हैं।

(३) गांठ, शोथ एवं व्रण पर इसके पत्तों को गरम कर बांधने से शोथ एवं वेदना कम होती है एवं व्रण जल्दी अच्छा होता है। इसी प्रकार स्तनों पर बांधने से दुग्ध रुक जाता है तथा सूजन कम होती है। पान के रस में थोड़ा चूना मिलाकर शोथ आदि पर पोल्टिस के रूप में व्यवहार करते हैं।

(४) कोंकण की तरफ पान के फलों को मधु के साथ खांसी में देते हैं।

(५) उड़ीसा में इसके मूल को काली मिर्च के साथ संततिनियमन के लिये सेवन करते हैं।

(६) नेत्राभिष्यंद एवं रतौंधी में पत्तों का रस मधु मिलाकर आंख में डाला जाता है।

निषेध—नेत्ररोग, रक्तपित्त, क्षत, वातविकार, विषबाधा, शोष, मदात्यय, मोह एवं मूर्च्छा में इसका सेवन निषिद्ध है।[1]

मात्रा—स्वरस ½–१ तो०।

अथ बिल्वः (बेल)। तस्य नामानि गुणाँश्चाह

बिल्वः शाण्डिल्यशैलूषौ मालूरश्रीफलावपि।[2] श्रीफलस्तुवरस्तिक्तो ग्राही रूक्षोऽग्निपित्तकृत्।
वातश्लेष्महरो बल्यो लघुरुष्णश्च पाचनः ॥ १३ ॥

बेल के नाम तथा गुण—बिल्व, शाण्डिल्य, शैलूष, मालूर और श्रीफल ये सब संस्कृत नाम बेल के हैं। बेल-कषाय तथा तिक्त रस युक्त, ग्राही, रूक्ष, अग्निवर्धक, पित्तकारक, वात कफनाशक, बलकारक, लघु, उष्णवीर्य तथा पाचक है॥ १३॥

३ बेल

हि०—बेल, श्रीफल। **बं०, म०**—बेल। **गु०**—बीली। **क०**—बेलपत्रे। **ते०**—मारेडु, बिल्वपंडु। **ता०**—बिल्वम, बिल्वपझम। **मा०**—बील, बोलो। **मल०**—कुवलप-पेझम। **सिन्ध०**—बिल, कटोरी। **उडि०**—बेलो। **अ०**—सफरजले हिंदी। **फा०**—बेह हिंदी, बल, शुल्ल। **अं०**—Bengal Quince (बेंगाल् क्विन्स); Bael fruit (बेल फ्रुट)। **ले०**—*Aegle marmelos Corr.* (इगल् मार्मेलोस् कॉर)। Fam. Rutaceae (रूटॅसी)।

यह आसाम, ब्रह्मा, बंगाल, बिहार, युक्तप्रान्त, अवध, झेलम, मध्य और दक्षिण हिन्दुस्तान तथा सिलोन में जंगली और प्रायः सभी स्थानों में बागी दोनों प्रकार से उत्पन्न होता है।

इसका वृक्ष—मध्यमाकार का ५० फुट से भी ऊँचा होता है। शाखाओं पर सीधे, मोटे, तीक्ष्ण एक इञ्च तक लम्बे कांटे होते हैं। टहनियों पर पत्ते विषमवर्त्ती रहते हैं। प्रत्येक सींक पर तीन-तीन

---

१. न नेत्ररोगे न च रक्तपित्ते क्षते न वाते न विषे न शोषे।
मदात्यये नापि च मोहमूर्च्छाश्वासेषु ताम्बूलमुशन्ति वैद्याः॥ (सुषेणदेवः)

२. गन्धगर्भः शलाटुश्च कण्टकी च सदाफलः। (कांचित्कः)

पत्रकों से युक्त पत्ते रहते हैं। **पत्रक**—कसौंदी के पत्तों के आकार वाले एवं अंडाकार-भालाकार होते हैं। बीचवाला पत्ता अन्य दो से कुछ बड़ा होता है। फाल्गुन-चैत्र में पुराने पत्ते गिर जाते हैं और चैत्र-वैशाख में क्रम से नवीन पत्ते निकल आते हैं। इसी समय में हरियाली लिये सफेद रङ्ग के, ४, ५ पंखडियों (अन्तर्दल) वाले एवं करीब १ इञ्च चौड़े फूल लगते हैं और उनमें मधु के समान मन्द गन्ध निकलती है। **फल** (बीजिमांसल फल—Berry)—गोलाकार ३–८ इञ्च व्यास के, हरिताभ रंग के, पकने पर पीताभ भूरे रंग के एवं चिकने होते हैं। बहिर्भित्ति (Epicarp) से बाह्य कठोर काष्ठमय छिलका बनता है जो करीब ३ मि. मि. मोटा, रक्ताभ रंग का एवं अन्दर से रेशेदार होता है। मध्यभित्ति एवं अन्तर्भित्ति से गूदा बनता है जो आवरण से चिपका हुआ तथा हलके रक्ताभ नारंगी रंग का होता है। **बीज**—बहुत, १०–१५ समूहों में, बिनौले के सदृश सफेद रोमों से युक्त एवं चिकने तथा रंगहीन गोंद से लिपटे रहते हैं। फलों में मन्द सुगंध आती है तथा इनका स्वाद गोंद की तरह होता है। बेल के दो तरह के फल होते हैं। लगाये हुये फल बड़े, सुस्वादु एवं कम बीज वाले होते हैं। जंगली फल छोटे, कुछ मादक एवं इसके बीज अधिक गोंद से लिपटे होते हैं तथा ये मछली मारने के काम में आते हैं।

बेल अपने यहां बहुत पवित्र माना गया है। सूतिकागार के निर्माण में एवं सूतिका के पलंग की लकड़ी बेल की लेने का चरकादि में विधान है। सुश्रुत में मेधायुष्कामीय अध्याय (चि० अ० २८) में विशिष्ट पद्धतिसे ऋग्वेदोक्त श्रीसूक्त के द्वारा बिल्व की आहुति आदि का विधान किया है जिससे अलक्ष्मी का नाश एवं आयुवृद्धि होती है।

बेल के मूल, त्वचा, पक्व-अपक्व फल, पत्र एवं पुष्प का औषध में व्यवहार किया जाता है। चूर्णादि के लिये कच्चे फल का, मुरब्बे के लिये अधपके फल का और पानक के लिये परिपक्व फल का गूदा लेना चाहिये। दशमूल आदि कषायों में मूल या वृक्ष की त्वचा ली जाती है।

रासायनिक संगठन—बेल के फलों में गोंद एवं पेक्टिन (Pectin) के अतिरिक्त प्रह्लासक (Reducing) शर्करा ३·७%, संपूर्णशर्करा ४·६%, तैल जिसमें मार्मेलोसिन (Marmelosin, $C_{13}H_{12}O_3$) नामक एक महत्व का रवेदार पदार्थ रहता है तथा उडनशील तेल रहता है। पक्व फलों में टॅनिन सदृश पदार्थ अत्यल्प मात्रा में रहते हैं। इसके मूल, पत्र एवं छाल में प्रह्लासक शर्करा एवं टैनिन पाया जाता है। इसके बीजों में एक हलके पीले रंग का तैल होता है।

गुण और प्रयोग—**कच्चा बेल** कटु, तिक्त, कषाय, स्निग्ध, उष्ण, दीपन, ग्राही, वात-कफनाशक एवं आन्त्र को बल देने वाला है। **पक्व फल** मधुर, सुगन्धि, गुरु, विदाही, विष्टम्भि, दुर्जर, दोषकर, आनुलोमिक एवं दुर्गन्धयुक्त अधोवायु उत्पन्न करने वाला है। **बिल्वपत्र** वातहर, शोथहर, ज्वरहर, श्लेष्मनिःसारक, ग्राही एवं आमशूलघ्न होते हैं। **बिल्वमूल**—वातनाडीसंस्थान के लिये शामक, मधुर, छर्दिघ्न एवं वातहर है। **पुष्प**—अतिसार, तृषा एवं वमन में लाभदायक होते हैं। **इसकी मज्जा** का तैल उष्ण एवं उत्तम वातहर माना जाता है। इसके **बीज**—१॥ माशे की मात्रा में अच्छे विरेचक होते हैं।

बिल्व का उपयोग अतिसार, प्रवाहिका, संग्रहणी, मधुमेह, कर्णरोग, वातरोग, वमन, कामला, अर्श, शोथ एवं ज्वर में किया जाता है।

(१) इसके पके फल का गूदा मृदुविरेचक होने के कारण इसका जल में शर्बत बनाकर लेने से जीर्ण विबन्ध, अर्श, आध्मान एवं कुपचन में लाभ होता है। जिन्हें बार-बार विबन्ध एवं अतिसार क्रमशः हुआ करता है उन्हें नित्य सुबह यह दिया जाता है। स्निग्ध एवं मृदुविरेचक रूप में यह प्रवाहिका की रोग-निर्मुक्तावस्था एवं संग्रहणी की प्रारंभिक अवस्था में दिया जाता

है। प्रवाहिका में इसको लेते रहने से विबन्ध नहीं होता जिससे आन्त्रिक व्रण जल्दी अच्छे होते हैं। संग्रहणी (Sprue) की प्रारंभिक अवस्था में ताजा फल तथा शर्करा से अवश्य लाभ होता है।

(२) भुना हुआ कच्चा फल या कच्चे फल का सुखाया हुआ गूदा ग्राही एवं दीपन होने के कारण अतिसार, रक्तातिसार एवं प्रवाहिका में दिया जाता है। जब ज्वर न हो, रोगी दुर्बल हो तथा पाचन खराब हो गया हो तब इससे विशेष लाभ होता है। आंव, रक्त एवं कुंथन युक्त तीव्र प्रवाहिका में यद्यपि इसके चूर्ण को लाभदायक माना गया है तथापि इन अवस्थाओं की अपेक्षा जीर्ण विकारों में इसका गुणकारी प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। इसके सेवन के पश्चात् धीरे-धीरे रक्त कम होकर पाखाना बँधा होने लगता है। अधिक दिन लेते रहने से आंव भी कम हो जाती है तथा बाद में बिलकुल नहीं रहती। जीर्ण आंव की शिकायत होने पर इसके साथ बड़ी सौंफ एवं धोडवच मिलाकर क्वाथ बनाकर देते हैं। रक्तपित्त वाले रोगी को आंव होने पर यह विशेष लाभदायक है। अरारूट के साथ इसकी पेया बनाकर देने से आन्त्र को बल प्राप्त होता है। प्रवाहिका में बेल का कल्क, तिल का कल्क, दही की मलाई तथा घृत देते हैं। पित्त एवं रक्तातिसार में इसकी मज्जा एवं मुलेठी, शर्करा, मधु एवं तंडुलांबु के साथ देने से लाभ होता है। बिल्व एवं गुड़ का प्रयोग आमशूल, विबंध, कुक्षिशूल तथा रक्तातिसार में लाभदायक होता है। अत्युग्र ग्रहणी में बिल्व के साथ सोंठ एवं गुड़ मिलाकर सेवन करे एवं आहार में तक्र का सेवन करें। पुराने विकारों में बेल का मुरब्बा भी लाभदायक होता है। पुराने सोजाक में ताजा गूदा एवं कबाबचीनी दूध के साथ देते हैं।

(३) अर्श में सुखोष्ण मूलक्वाथ में रोगी को बैठावें। रक्तार्श में बिल्वमज्जा एवं तक्र का उपयोग लाभदायक होता है।

(४) बेल की जड़ शामक होने के कारण हृदय की धड़कन, उदासीनता, निद्रानाश तथा पागलपन इनमें दी जाती है। विषमज्वर में इसके जड़ की छाल का क्वाथ पिलाते हैं। जीरा एवं मूलत्वक् को पीसकर घी के साथ शुक्र-तारल्य में देते हैं। विषैले जन्तुओं के दंश में इसका लेप किया जाता है। बच्चों को जब कै एवं दस्त होते हैं तब इसको चावल के मांड के साथ उबालकर वह मांड चीनी मिलाकर देते हैं।

(५) इसके ताजे पत्तों का स्वरस ज्वर, कफज्वर, अभिष्यन्द, शोथ तथा कफ विकारों में देते हैं। दमा में इसका क्वाथ देते हैं। नेत्राभिष्यन्द में इसका स्वरस देते हैं तथा पत्तों का लेप पलकों पर करते हैं। शोथयुक्त विकारों में तथा व्रण पर पत्तों का पुल्टिस लाभदायक होता है। इसका स्वरस काली मिर्च के साथ जलशोथ, विबंध एवं कामला में देते हैं। यह शरीर की दुर्गंध को भी दूर करता है। मधुमेह में १-२ तोला स्वरस देने से लाभ होता है।

(६) बिल्वफल को गोमूत्र के साथ पीसकर अजाक्षीर के साथ तैल सिद्ध कर कर्णबिन्दु के रूप में प्रयोग करने से बाधिर्य में लाभ होता है।

मात्रा—चूर्ण २-८ माशा; प्रवाहीसत्व ½-१ ड्राम; क्वाथ ½-२ औंस।

अथ गम्भारी। तस्या नामानि गुणाँश्चाह

गम्भारी भद्रपर्णी च श्रीपर्णी मधुपर्णिका। काश्मीरी काश्मरी हीरा काश्मर्यः पीतरोहिणी॥१४॥
कृष्णवृन्ता मधुरसा महाकुसुमिकाऽपि च। काश्मरी तुवरा तिक्ता वीर्योष्णा मधुरा गुरुः॥१५॥
दीपनी पाचनी मेध्या भेदिनी भ्रमशोषजित्। दोषतृष्णाऽऽमशूलार्शोविषदाहज्वरापहा॥१६॥

गम्भारी के नाम तथा गुण—गम्भारी, भद्रपर्णी, श्रीपर्णी, मधुपर्णिका, काश्मीरी, काश्मरी, हीरा, काश्मर्य, पीतरोहिणी, कृष्णवृन्ता, मधुरसा और महाकुसुमिका ये सब संस्कृत नाम गम्भारी के हैं। **गम्भारी**—मधुर, कषाय तथा तिक्त रस युक्त, उष्णवीर्य, गुरु, अग्निदीपक, पाचक, मेधा के लिये हितकर तथा मलभेदक होती है। वह भ्रम, शोष, वातादिक दोष, तृषा, आम, शूल, बवासीर, विष, दाह और ज्वर इन सब रोगों को दूर करने वाली होती है॥ १४-१६॥

अथ गम्भारीफलगुणानाह

तत्फलं बृंहणं वृष्यं गुरु केश्यं रसायनम्। वातपित्ततृषारक्तक्षयमूत्रविबन्धनुत्॥ १७॥
स्वादु पाके हिमं स्निग्धं तुवराम्लं विशुद्धिकृत्। हन्याद्दाहतृषावातरक्तपित्तक्षतक्षयान्॥१८॥

इसके फल के गुण—इसका फल बृंहण (धातुवर्धक), वृष्य (वीर्यवर्धक), गुरु, बालों के लिये हितकर और रसायन होता है। यह वात, पित्त, तृषा, रक्तक्षय, मूत्र-सम्बन्धी विबद्धता का नाशक है और पाक में मधुर रस, स्वाद में कषाय तथा अम्ल रसयुक्त, शीतवीर्य, स्निग्ध एवं शुद्धिकारक होता है। यह दाह, तृषा, वात, रक्तपित्त, क्षत और क्षय इन सब रोगों को दूर करता है॥१७-१८॥

४ गम्भारी

हि०, पं०—गम्भारी, खम्भारि, कम्भार, गम्भार, गम्हार, कुम्हार, कासमर। **बं०**—गामार गाछ, गम्भार। **म०**—शिवण। **गु०**—शीवण, सवन। **क०**—सीवनी। **ते०**—गुमारटेक। **ता०**—गुमड़ी। **आसाम**—गोमरी। **गरो०**—बोल्को बक। **मा०**—शेवण, शिवण, कुम्भेरन। **ले०**—*Gmelina arborea Linn.* (मेलीना आर्बोरिआ लिन.)। Fam. Verbenaceae (वर्बिनेसी)।

गम्भारी—इस देश के कई प्रान्तों में उत्पन्न होती है, विशेषकर दक्षिण, कोंकण, मध्यभारत, बरार, सिलोन, पश्चिमोत्तर-हिमालय, चट्टगांव, पूर्व बङ्गाल एवं बिहार आदि प्रान्तों में पाई जाती है। इसका वृक्ष-बड़ा होता है। ऊँचाई में कहीं-कहीं ६० फुट से भी ऊँचा वृक्ष देखने में आता है। **छाल** का रंग सफेद, ताजी छाल किञ्चित् पीलापन युक्त हरियाली लिये सफेद तथा सफेदी लिये भूरे रंग की होती है। छाल पर काले चिह्न या छोटे-छोटे गोल दाने होते हैं। इसकी **टहनियां**-श्वेताभ एवं रोमश होती हैं। **काट**-प्रायः आधा इञ्च मोटा, बिना रेशे का और हलका या गहरा नारंगी रंग से मिला रहता है। **पत्ते**-४-९ इञ्च लम्बे, ३-७ इञ्च चौड़े, लट्वाकार, चौड़े, प्रायः हृदत, नोकीले, अधरतल पर प्रायः क्षोदलिप्त, २-६ इञ्च लम्बे वृन्त से युक्त और आमने-सामने, परन्तु प्रायः एक सन्धि के दोनों पत्ते कुछ छोटे-बड़े होते हैं। वसन्त ऋतु में पुराने पत्ते गिरकर नये पत्ते निकलते हैं। इसी समय ३-८ इञ्च लम्बी मंजरियों में रक्ताभ या पीले रंग के १-१·५ इञ्च लम्बे फूल आते हैं और उन पर भूरे रंग की छींटें रहती हैं। **फल**-बहेड़े के समान परन्तु कुछ लम्बाई लिये अष्ठिल, अभ्यण्डाकार, ·७५-१ इञ्च व्यास वाले और २-१ कोश तथा बीज वाले होते हैं। वे जेठ आषाढ़ तक पक कर भूमि में गिर पड़ते हैं।

इसके दो भेद भी पाये जाते हैं जिनमें से एक में पुष्पव्यूह बड़े होते हैं तथा दूसरे में पत्ते कुछ छोटे, चर्मल, अधर तल पर नसें उभरी हुई तथा पुष्पव्यूह छोटे होते हैं।

यह दशमूल गण की औषध है। इसका 'कासमर' नाम काश्मर्य का और 'गम्हार' गम्भारी का अपभ्रंश है। इसके फल, मूल, त्वक एवं पत्र का चिकित्सा में उपयोग होता है।

रासायनिक संगठन—इसके मूल में पीतवर्ण का गाढ़ा तैल, राल, क्षाराभ, अत्यल्प बेंझोइक् एसिड एवं मैंगनीज रहित राख ये पदार्थ पाये जाते हैं। इसके फल में ब्यूटिरिक् (Butyric)